जाति-प्रथा की उत्पत्ति एवं विकास
Origin & Development of Jati

Dr. Manoj Kumar
Assistant Professor (Guest)
Dept. of A.I.H. & Archaeology,
Patna University, Patna-800005
Email- dr.manojaihcbhu@gmail.com
Mobile- 7007236005
P.G. / M.A. IVth Semester,
Paper - Ancient Indian Society (E.C.)
Dept. of A.I.H. & Archaeology. Patna University, Patna

'जाति' शब्द की व्युत्पति संस्कृत की 'जन' धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ 'प्रजाति', 'जन्म', अथवा 'भेद' से लिया जा सकता है। अंग्रेजी में जाति के लिए 'कास्ट' शब्द का व्यवहार किया जाता हैं। यह 'कास्ट' शब्द पुर्तगाली शब्द 'कास्टा' से बना है जिसका अर्थ 'नस्ल', 'प्रजाति', और 'जन्म' हैं। इसके साथ ही कास्ट को लैटिन शब्द 'कास्ट्स' से व्युत्पति हुआ बताया जाता है। वस्तुतः जाति का सम्बन्ध प्रजातीय अथवा जन्मगत आधार पर स्थिति व्यवस्था से माना जा सकता हैं।

प्राचीन काल में भारतीय समाज अपने कर्मो के आधार पर चार वर्णों में विभक्त था। यथा-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। इन वर्णों के अन्तर्गत अनेक व्यक्ति विविध कार्यों से जुड़े हुए थे जैसे- शिल्प कला के विविध कार्य, विद्याध्ययन के विभिन्न स्तर, शस्त्र-विद्या अथवा राजकीय पदों के विभिन्न स्तर आदि। कालांतर में इन चार वर्णों के स्थान पर कई जातिया अस्तित्व में आई।

वैदिक साहित्य में जाति शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु ऐसे वर्गों के नाम मिलते हैं जो आगे चल कर जातियों के रूप में सामने आए। जैसे-उग्र, क्षत्तू, सूत, पोल्कस, चाण्डाल आयोगव, पाश्वाल तथा वैदेह आदि। ऋग्वेद में उग्र शब्द का प्रयोग शक्तिशाली पुरुष के रूप में तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में अधिकारी के पद के रूप में आया है। ऋवैदिक काल से उत्तर वैदिककाल तक जाति-प्रथा का वह स्वरूप स्थापित हो गया जिसमें जाति का निर्धारण जन्म के आधार पर होता था। पाण्डुरंग वामन काणे के अनुसार ब्राह्मण ग्रन्थों के रचना-काल में ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपना वर्गीकरण कर चुके थे। शूद्रों में अधिकतर दास एवं दस्यु सम्मिलित थे।

ऋग्वैदिक काल में जाति- प्रथा पाए जाने के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में वर्णित 'पुरुष सूक्त' में चार जातियों का उल्लेख मिलता है। किन्तु यह माना जाता है कि दसवें मण्डल की रचना. ऋग्वेद की रचना के बाद की गई। अनार्यो को दास, दस्यु या असुर कहा जाता था।

आर्यों तथा अनार्यों के मध्य सम्बन्धों का रूप पहले शत्रुओं की भाँति रहा और। युद्ध के उपरान्त विजेता तथा दासों की भाँति रहा। दोनों के मध्य पाई जाने वाली इसी कटुता ने दास बनाने की भावना तथा उच्चता एवं निम्नता की भावना को बढ़ावा दिया।

पाश्चात्य विद्वानों ने प्राचीन भारतीय समाज में जाति-प्रथा की उत्पत्ति के निम्नलिखित कारण निरूपित किए हैं-

(1) ओल्डनबर्ग एवं नीस फील्ड के अनुसार पैतृक व्यवसाय होने के कारण जातियों की उत्पति हुई।

(2) डॉल्मन के अनुसार व्यापारी तथा शिल्पी अपने व्यवसायों में सफलता प्राप्त करने के अपने-अपने तरीकों को गुप्त रखना चाहते थे।
(3) सेनार्ट का मत था कि एक परिवार के व्यक्ति एक ही पूर्वज की पूजा करते थे तथा संस्कार के समय एक ही भोज में सम्मिलित होते थे अत: उनकी अलग एक जाति बन गई।
(4) रिजले के अनुसार प्रजाति भेद और रंग-भेद के कारण विभिन्न जातियों की उत्पत्ति हुई।
(5) कुछ विद्वानों का मत है कि विभिन्न समूहों के धार्मिक सम्प्रदायों तथा धार्मिक क्रियाओं में अन्तर होने के कारण भी अनेक जातियाँ बनीं जैसे-ऋग्वेटी सामवेदी, यजुर्वेदी, सतनामी, विश्नोई, जेगी, गोसाई, लिंगायत, वैष्णव आदि।

जाति-प्रथा का विकास - जाति- व्यवस्था ने सम्पूर्ण भारतीय समाज को अनेक लघु इकाइयों में बाँटने का कार्य किया। ऋग्वैदिक काल के उपरान्त जाति-प्रथा निरन्तर सुदृढ़ होती गई । चार वर्णों के अन्तर्गत अनेक जातियों का विकास हुआ। जाति-प्रथा के विकास का एक अन्य कारण यह भी था कि शिल्पियों की विविध श्रेणियों का विस्तार हुआ। ये श्रेणियाँ स्वसंगठित होती गईं। ये श्रेणियाँ थीं- स्वर्णकार, बढ़ई, लुहार, तन्तुवाय, रजक, राजमिस्त्री आदि।

सूत्र-ग्रन्थों से पता चलता है कि इस समय तक वर्ण जातियों में परिवर्तित होने लगे थे। वर्ण का निर्धारण जन्म के आधार पर किया जाने लगा था । सूत्र-ग्रन्थों में ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ वर्ण का माना गया । आपस्तम्ब सूत्र के अनुसार राजा को उन सभी लोगों को दण्डित करना चाहिए जो वर्ण धर्म की अवहेलना करें। ब्राह्मणों को अन्य तीन वर्णों क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र से श्रेष्ठ कहा गया। इन ग्रन्थों में तीन उच्च वर्णों को द्वि-जाति कहा गया। द्वि-जातियों में उपनयन संस्कार की प्रथा थी जबकि एक-जाति कहलाने वाले शूद्रों का उपनयन संस्कार नहीं होता था । वर्ण कर्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-इन चारों के कर्म निर्धारित थे किन्तु वे दूसरे कर्म भी करते थे। पाणिनि ने शस्त्र धारण करने वाले ब्राह्मणों का उल्लेख किया है।

महाकाव्य-काल में जाति-प्रथा- महाकाव्य-काल में चार मुख्य जातियों के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियाँ भी बन गई थीं। इन अन्य जातियों के बनने का कारण सम्भवत: विभिन्न जातियों में अन्तर्विवाह था। किन्तु विभिन्न जातियों के बीच वैवाहिक सम्बन्धों के भी कुछ नियम थे जिनके अन्तर्गत कोई पुरुष अपनी जाति से ऊँची जाति की स्त्री से विवाह नहीं कर सकता था। इसके विपरीत वह अपनी जाति की अथवा अपनी जाति से नीची जाति की स्त्री से विवाह कर सकता था। यद्यपि बाद में अपनी जाति से नीची जाति की स्त्री से विवाह करना निषेध कर दिया गया तथा समजाति में विवाह- सम्बन्ध होने लगे। महाकाव्य-काल ब्राह्मण जाति उच्च जातियों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाने लगी थी। दूसरा स्थान क्षत्रियों का तथा तीसरा वैश्यों का था शूद्रों को समाज में सबसे निम्न जाति का माना जाता था शूद्र के अन्तर्गत कई जातियाँ सम्मिलित थीं ।

स्मृति-काल में जाति-प्रथा- स्मृति-काल में जाति-प्रथा का और अधिक विस्तार हुआ। मनुस्मृति में समाज के दो भाग मिलते हैं-आर्य तथा अनार्य । अनार्यों को अनार्य, दस्यु तथा म्लेच्छ भी कहा जाता था। दस्युओं में चाण्डाल, श्वपक आदि सम्मिलित थे। अनार्य घुमक्कड़ तथा विस्थापित जीवन बिताते थे तथा श्मशान - भूमि के पास वनों में रहते थे। उनके पास बहुत से कुत्ते और गधे होते थे। मनु के अनुसार ब्राह्मणों को दान देना प्रत्येक व्यक्ति का प्रथम कर्त्तव्य है तथा राज्य के सभी उच्चपदों पर ब्राह्मणों को आसीन किया जाना चाहिए । ब्राह्मण ऐसे लोगों का भोजन ग्रहण नहीं करते थे जो श्राद्ध नहीं करते थे मनु के अनुसार ब्राह्मणों को शूद्रों का भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण कोई अपराध करे तो उसे दण्डित तो किया जाता था किन्तु मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। यदि कोई ब्राह्मण किसी शुद्र की हल्या कर दे तो उसे वही प्रायश्चित्त करना होता था जो उसे कुत्ते, बिल्ली या कौवे के मारने पर करना होता था ।

इस काल में अनेक जातियों की उत्पत्ति हुई। ब्राह्मण पिता तथा क्षत्रिय माता की सन्तान ब्राह्मण होती थी। मनु के अनुसार पति से एक वर्ण नौची पत्नी होने पर संतान को उसके पिता का वर्ण मिलता था किन्तु ऐसी सन्तान व्रात्य कहलाती थी। व्रात्यों को अपने पिता की जाति में प्रवेश तभी दिया जाता था जब वे प्रायश्चित कर लेते थे । 'मनुस्मृति में निषाद, सूत, उग्र, अम्बष्ठ, विदेह आदि 57 जातियों का उल्लेख मिलता है। इन सभी जातियों की उत्पत्ति अन्तर्जातीय विवाहों के फलस्वरूप हुई। जैसे ब्राह्मण माता और वैश्य पिता की सन्तान 'अम्बष्ठ' कहलाई । इसी प्रकार ब्राह्मण पिता और शूद्र माता की सन्तान 'निषाद', क्षत्रिय पिता और शूद्र माता की सन्तान 'उग्र', क्षत्रिय पिता और ब्राह्मण माता की सन्तान 'सूत', वैश्य पिता और ब्राह्मणी माता की सन्तान 'विदेह' तथा वैश्य पिता और क्षत्रिय माता की सन्तान मागध कहलाई।

शुद्रों का काम ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जातियों की सेवा करना था उनसे सफाई करने का कार्य कराया जाता था। उन्हें किसी भी प्रकार का संस्कार करने कीअनुमति नहीं थी किन्तु वे श्राद्ध कर सकते थे शूद्रों के अतिरिक्त दास भी थे। जिनकी सात श्रेणियाँ थीं। इनमें से कुछ युद्ध के समय बन्दी बनाए गए दास थे, कुछ खरीदे गए दास थे, विरासत में मिले दास थे, कुछ ऋण न चुका पाने के कारण दास बने। वंशगत दास कभी मुक्त नहीं हो सकते थे। दासों को सम्पत्ति रखने का अधिकार नहीं था।

बौद्ध तथा जैन-काल में जाति प्रथा- बौद्ध तथा जैन-काल के आते-आते जाति-प्रथा में उच्च-निम्न तथा अस्पृश्यता जाति-प्रथा का भेद-भाव बहुत बढ़ गया था। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के द्वारा वैश्यों एवं शूद्रों को अपने से निम्न समझा जाता था। बौद्ध धर्म जाति-प्रथा का विरोधी था । बौद्ध धर्म में प्रविष्ट होने वालों को समान दृष्टि से देखा जाता था। बुद्ध ने जन्म के आधार पर श्रेष्ठता को न मानते हुए चरित्र की श्रेष्ठता पर बल दिया। कर्म-काण्ड से प्रेरित हो कर हिन्दू धर्म को अपव्ययी बना दिया था साथ ही बौद्ध धर्म में प्रत्येक छोटी-बड़ी जाति के मनुष्यों के लिए द्वार खुले थे। अत: विभिन्न जातियों के लोग बौद्ध धर्म अपना कर बौद्ध कहलाए। चार वर्णों एवं जातियों के अतिरिक्त कुछ मनुष्य ऐसे थे जिन्हें आर्यों के समाज का अंग नहीं माना जाता था। ऐसे लोगों के समूह को बौद्ध ग्रन्थ में 'हीन जाति" कहा गया है। बौद्ध- काल में प्रमुख पाँच हीन जातियाँ थीं-चाण्डाल, वेण, निषाद, रथकार तथा पुक्कस। हीन जातियों में कुछ अनार्य जातियों के लोग भी थे। विनयपिटक में वेणों, चाण्डालों, निषादों, रथकारों ने अलग-अलग अपनी जातियाँ बना ली थी। किन्तु कुम्हार, चमार आदि हस्तशिल्पियों के वर्ग संगठित नहीं थे।

मौर्यकालीन जाति-प्रथा - मौर्यकाल में प्रमुख चार जातियों के अतिरिक्त अनेक नई जातियाँ बन गई थीं इन नवीन जातियों के निर्माण के आधारभूत कुछ त्त्व वैदिककालीन थे। जैसे-व्यवसाय विशेष, प्रजाति तथा निवास-स्थान। कौटिल्य ने चारो वर्णों के प्रायः ने ही कार्य बताए हैं जो सूत्र-ग्रन्थों में उल्लेखित हैं । कौटिल्य के अनुसार ब्राह्मणों को यज्ञ करना, दान देना और दान ग्रहण करना चाहिए। क्षत्रियों को शस्त्र का प्रयोग कर के आजीविका चलानी चाहिए तथा रक्षक का धर्म निभाना चाहिए। वैश्यों को कषि, पशुपालन तथा व्यापार-कर्म करना चाहिए। शुद्रों का कर्त्तव्य था कि वे द्विजों की सेवा करें, कला और शिल्प द्वारा आजीविका चलाएँ। कौटिल्य ने वैश्य पिता और शुद्र माता की सन्तान को 'शूद्र' कहा है।

मेगस्थनीज़ ने अपने यात्रा- वृत्तान्त में लिखा है कि भारतीय अपनी ही जाति में विवाह करते थे। मेगस्थनीज़ के वृत्तान्तों से भी प्राचीन भारत में जाति-प्रथा के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार भारत का समाज सात भाँगों में बँटा हुआ था। सबसे पहली श्रेणी में दार्शनिक थे। दूसरी श्रेणी में खेतों में काम करने वाले लोग थे। तीसरी श्रेणी गड़रियों की थी । चौथी श्रेणी उन कारीगरों की थी जो शस्त्र तथा कृषि-औजार बनाते थे। पाँचवीं श्रेणी सेना की थी। छठीं श्रेणी उन

कर्मचारियों की थी जो देश के संचालन एवं प्रबन्ध में सहयोग करते थे । सातवीं श्रेणी निर्धारकों एवं सभासदों की थी। इस श्रेणी के लोग शासन-संचालन में राजा को सलाह दिया करते थे। मेगस्थनीज़ के अनुसार अन्तर्जातीय विवाह की अनुमति इनमें से किसी को भी नहीं थी।

मौर्य तथा मौर्योत्तर-काल में भी जाति-प्रथा जन्म पर आधारित थी। इससे पूर्व पतंजलि के 'महाभाष्य' ग्रन्थ में शुंग युग में भी ब्राह्मणों के सामाजिक वर्चस्व का उल्लेख मिलता है। यही स्थिति मौर्य तथा मौर्योत्तरकाल में भी रही। मौर्योत्तरकाल में प्रत्येक जाति एवं वर्ण जन्म पर आधारित हो गया था।

गुप्तकाल एवं गुप्तोत्तर-काल में जाति-प्रथा गुप्तकाल में जाति-प्रथा के सम्बन्ध में जानकारी तत्कालीन साहित्य से मिलती है। गुप्तकालीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज प्रमुख चार जातियों में विभक्त था-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र। 'वर्णसंकर' जातियों के जन्म पर रोक लगाना राजा का कर्त्तव्य था। जातियों की शुद्धता पर बल दिया जाता था। तत्कालीन ग्रन्थों से ब्राह्मणों के आदर्शों एवं कर्त्तव्यों के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। योगी ब्राह्मण 'सिद्धि' एवं 'मोक्ष' के लिए चिन्तन-मनन करते थे । मुनित्व ग्रहण करने वाले ब्राह्मण कठिन तपस्या करते थे। तप, स्वाध्याय, वैदिक ज्ञान तथा प्रवचन करने में प्रवीण होना उनकी विशेषता थी। गृहस्थ ब्राह्मण पुरोहित, पुजारी तथा याज्ञिक का कार्य करते थे। अनेक ब्राह्मण व्यापार, वास्तुशिल्प, राजकर्म तथा शासन के विभिन्न कार्य करते थे । गुप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों को दान में भूमि तथा अग्रहार प्रदान किया जाता था। राज-परिवार के सदस्य भी ब्राह्मण शिक्षकों से ही शिक्षा ग्रहण करते थे । ब्राह्मणों को उनके गोत्रों से जाना जाता था तत्कालीन।अभिलेखों में भारद्वाज, भार्गव, आ्रेय, गौतम, वत्स, कश्यप, कण्व आदि कई गोत्र मिलते हैं। ब्राह्मणों के कुछ समुदाय वेदों के ज्ञान के आधार पर जाने जाते थे। सामवेद के ज्ञाता सामवेदी ब्राह्मण कहलाते थे। चारों वेदों के ज्ञाता चतुर्वेदी ब्राह्मण कहलाते थे। अभिलेखों में मातृविष्णु जैसे ब्राह्मणों के नाम भी मिलते हैं जिन्होंने राजा के रूप में राज्य किया। जातियों की शुद्धता पर बल दिए जाने के साथ ही अन्तर्जातीय विवाह के उदाहरण भी मिलते हैं। जैसे-रविकीर्ति नामक ब्राह्मण ने क्षत्रिय-कन्या भानुगुप्ता से विवाह किया था। वाकाटक ब्राह्मण राजकुमार रुद्रसेन द्वितीय का विवाह वैश्य-कन्या प्रभावती से हुआ था।

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों में परस्पर भोजनादि के सम्बन्ध थे किन्तु शूद्रों में से किसान, नाई, ग्वाले आदि का भोजन ही ग्रहण किया जाता था । क्षत्रिय व्यापार- कार्य कर सकते थे तथा वैश्य राजकार्य सम्हाल सकते थे। याज्ञवल्क्य के अनुसार शुद्रों को कृषि तथा व्यापार करके आजीविका कमाने की अनुमति थी। व्यवसाय के आधार पर अनेक जातियों का प्रादुर्भाव हो गया था यथा- किसान, व्यापारी, पशुपालक, लुहार, बढ़ई, जुलाहा, तेली आदि | इन जातियों में परस्पर वैवाहिक-सम्बन्ध हो सकते थे। किन्तु शूद्रों को पूरी तरह अस्पृश्य समझा जाने लगा था। उन्हें गाँव या शहर के बाहर रहना होता था तथा उच्च जाति के लोगों से उनका किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रहता था। फिर भी कुछ संकर जातियों के उल्लेख मिलते हैं। याज्ञवल्क्य ने क्षत्रिय वर तथा शूद्र वधू होने का भी उल्लेख किया है।

गुप्तोत्तर-काल में ब्राह्मणों की उपजातियों का बहुत विकास हुआ। तत्कालीन ग्रन्थों में ब्राह्मणों के श्रीमाल, सागर, पंचगौर, पंचद्रविड़, दध्य, पुष्कर, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, दीक्षित, मिश्र, त्रिपाठी आदि अनेक नाम मिलते हैं। अलबरूनी के अनुसार समाज में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे।

क्षत्रियों की सामाजिक स्थिति ब्राह्मणों के बाद होने पर भी सम्मानजनक थी। तत्कालीन ग्रन्थों से इस बात की जानकारी मिलती है कि क्षत्रियों में भी दो वर्ग थे। एक वर्ग उन क्षत्रियों का था जिनकी उत्पत्ति प्राचीन राजवंशों से हुई तथा दूसरा वर्ग उन क्षत्रियों का था जो जनसाधारण वर्ग के

थे । समाज में द्वितीय वर्ग के क्षत्रियों की अपेक्षा प्रथम वर्ग के क्षत्रियों का अधिक सम्मान था। क्षत्रिय वेदों का अध्ययन कर सकते थे किन्तु वेदों का अध्यापन नहीं कर सकते थे।

वैश्यों के कार्य व्यापार- वाणिज्य से सम्बन्धित थे । वे कृषि- कार्य करते थे, पशुपालन करते थे, व्यापार तथा साहूकारी करते थे। वे ब्याज के आधार पर ऋण देने।का कार्य भी करते थे। बारहवीं शती के ग्रन्थ 'कृत्य कल्प तरु' में वैश्यों द्वारा वेदों के अध्ययन किए जाने के अधिकार के बारे में ज्ञात होता है। वे नमक, दूध, लाख,।चमड़ा, मांस, नील, विष, अस्त्र-शस्त्र तथा मूर्तियों का व्यवसाय नहीं कर सकते थे। गुप्तोत्तर- काल में ब्राह्मणों ने वैश्यों का भोजन ग्रहण करना छोड़ दिया था। वैश्यों में भी अनेक जातियाँ बन गई थीं। जैसे-घर्कट, प्रागवट, श्रीमाल, घूसर आदि। वैश्यों में अन्तर्जातीय विवाह का चलन था। वैश्य-शासक हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह क्षत्रिय शासक ध्रुवभट से किया था।

शुद्रों में भी अनेक जातियों एवं उपजातियों का विकास हुआ। शूद्रों में कुम्हारों, मालियों, शिल्पकारों, मदिरा-निर्माताओं, तेलियों, अहीरों, कसेरों, दर्जियों, तमोलियों आदि को माना गया । शूद्रों को वेदों के अध्ययन करने का अधिकार नहीं था। ब्राह्मण शूद्रों के घर का भोजन ग्रहण नहीं करते थे। शूद्रों की कुछ जातियों की।आर्थिक स्थिति में पहले की अपेक्षा सुधार हुआ। मेधातिथि टीका के अनुसार शूदों को निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार दिया गया| कुछ शूद्रों को उच्च पदों पर आसीन होने का भी अवसर मिला। चीनी-यात्री युवान च्वांग के अनुसार सिन्ध का शासक शूद्र था। इसी काल में सज्जन नामक कुम्हार चित्तौड़ का राज्यपाल नियुक्त किया गया था शुद्रों के धार्मिक अधिकार सीमित थे किन्तु वे कुएँ- तालाब खुदवा कर, बाग लगवा कर, धर्मशाला खुलवा कर पुण्य कमा सकते थे।

इस प्रकार जाति-व्यवस्था ने जहाँ एक ओर सामाजिक ढाँचे का विस्तार किया वहीं जातिगत दूरियों में वृद्धि की । समाज में ब्राह्मणों का स्थान उच्च से उच्चतम हो गया वहीं शुद्रों के अधिकारों का क्षरण होता गया। उन्हें अन्य जातियों के द्वारा अस्पृश्य माना जाने लगा।

सहायक पुस्तक सूची :-

1. **पी.वी. काणे : धर्मशास्त्र का इतिहास**
2. **जय शंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास**
3. **ओम प्रकाश : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास**
4. **डॉ. शरद सिंह : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास**
5. **डॉ. नवीन कुमार : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास**
6. **डॉ. सुष्मिता पांडे : समाज, आर्थिक व्यवस्था, एवं धर्म (300-1200 इस्वी.)**